

मानवाधिकार एवं आतंकवाद

किसी ने लिखा है:-

राजा बोला कि रात है,
मंत्री बोला कि रात है,
सब बोले कि रात है,
लेकिन यह सुबह-सुबह की बात है।

ये पंक्तियाँ कहीं न कहीं सत्ता के प्रति आतंक को उजागर करती हैं।

वहीं दूसरी ओर भारतीय परम्परा की अनमोल धरोहर है: रामचरितमानस। इसमें गोस्वामी ने अपने राम राज्य वर्णन के अंतर्गत राम के मुख से कहलवाया है:-

“जो अनीति कुछ भासौ भाई
तौ मोहिं बरजहुँ भय बिसराई।”

एक महान प्रतापी शासक का जनता से खुला आह्वान है कि अनीति की बातें मैं जब भी करूँ तो मुझे बरज दीजिएगा, मुझे रोक दीजिएगा। इस प्रक्रिया में किसी भी तरह का भय उचित नहीं।

भय से मुक्ति किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की प्रथम और अनिवार्य अर्हता है। चाहे वह भय राजनीतिक सत्ता से हो, प्रशासनिक आकाओं से हो, समाज के ठेकेदारों से हो या फिर आतंकवादियों से।

वस्तुतः आतंकवादियों ने समाज में भय का जो परिवेश तैयार किया है, हिंसा का जो रास्ता अख्तियार किया है, लाखों बच्चों, स्त्रियों और निर्दोषों को मौत के घाट उतारा है, सब कुछ मानवाधिकारों का हनन है। मगर आतंकवाद के खिलाफ मुहिम के नाम पर पश्चिमी सम्प्रभुओं ने जिस तरह कुछ अन्य देशों की सम्प्रभुता रौंदी है वह भी उन सम्प्रभु राष्ट्रों की स्वतंत्र जनता के मानवाधिकारों का उल्लंघन ही माना जाएगा।

वस्तुतः जीवन जटिलताओं का नाम है। इसलिए जीवन के मुद्दे भी सीधे-सपाट नहीं हो सकते। कोई मुद्दा विमर्श का विषय तभी बनता है, जब उसमें गुंथियाँ होती हैं। पक्ष-विपक्ष का संघर्ष होता है। इस संघर्ष के बीच खड़े विमर्शकर्ता के सम्मुख संपक्ष के बिन्दु की तलाश सबसे बड़ी चुनौती होती है।

एक ओर आतंकवाद की वजह से मानवाधिकारों का जो हनन हुआ है और दूसरी ओर आतंकवाद के विरुद्ध जंग के नाम पर जिस तरह मानवाधिकारों को रौंदा गया है, ये दोनों सवाल ‘मानवाधिकार और आतंकवाद’ के मुद्दे को विमर्श की टेबल पर लाकर पटक देते हैं।

आखिर मानवाधिकार हैं क्या? इनका अनौपचारिक पारम्परिक सांस्कृतिक स्वरूप क्या है? औपचारिक स्तर पर वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्वरूप क्या है? आतंकवाद की अवधारणा क्या है? आतंकवाद और मानवाधिकार का संबंध क्या है? आतंकवाद के उन्मूलन एवं मानवाधिकारों के उन्नयन के लिए क्या किया जाना चाहिए ताकि बेहतर विश्व-व्यवस्था एवं शांति स्थापित किया जा सके। यह सवाल अत्यंत अहम् बन चुके हैं।

धरती विविधताओं से परिपूर्ण है। उन्हीं विविधताओं में से एक है मनुष्य। क्या यह मनुष्य अन्य जानवरों से कुछ अधिक है?

शायद हाँ।

उन बिन्दुओं से समुच्चय को हम मानवाधिकार की संज्ञा दे सकते हैं, जो मनुष्य को प्रकृति के अन्य प्राणियों से कुछ अधिक बनाते हैं और जिनके अभाव में मनुष्य वास्तविक अर्थों में मनुष्य नहीं रह जाता।

मनुष्य अपरिमित संभावनाओं का स्वामी है। आकाश मनुष्य की सीमा है। इन अपार संभावनाओं को अमलीजामा पहनाने के लिए अनिवार्य है कि मानव किसी अन्य मानव या समाज के संकीर्ण समूह के लिए साधन न बन जाए। वह ऐसी परिस्थितियों से न घिरा रहे कि चाह कर भी अपने जीवन को गरिमापूर्ण तरीके से न जी सके। इसलिए मानवाधिकार मानवोचित जीवन जीने के लिए वांछित वे स्थितियाँ हैं जो न केवल मानव को साध्य बनाती हैं बल्कि उसे एक ऐसा जीवन भी देती हैं जिसे स्वतंत्रता और विकास जैसी गरिमापूर्ण स्थितियों के साथ जिया जा सके।

इन मानवाधिकारों को मूलाधिकारों, आधारभूत अधिकारों, नैसर्गिक अधिकारों आदि अन्य अनेक नामों से भी जाना जाता है क्योंकि इनकी प्राप्ति सामाजिक या राजनीतिक सत्ता की इच्छा पर निर्भर नहीं होती। ये व्यक्ति को नैसर्गिक रूप से स्वयमेव प्राप्त होते हैं और इसलिए इनका स्वरूप राजनीतिक या विधिक से कहीं अधिक नैतिक होता है। मानवाधिकारों का विश्लेषण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि पहलुओं से सामान्यतः किया जाता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि इन सबसे पहले मौलिक रूप से मानवाधिकार का मुद्दा सांस्कृतिक है क्योंकि यह आदिमानव (जानवर) से मानव (मनुष्य) बनने की प्रक्रिया से सम्बद्ध है। यह विशुद्ध प्राकृतिक अवस्था से मानव सभ्यता तक परिशोधन की चेतना का नाम है। मानव और समाज ने अपनी विकास परम्परा के दौरान जो उदात्त मूल्य ग्रहण किये हैं, उन समस्त मूल्यों का समुच्चय ही मानवाधिकार है। यह मानवीय जीवन रूपी विटप (वृक्ष = tree) का पुष्प है। जिससे जीवन, जीवन बनता है, जीवन सुंदर बनता है।

भले ही मानवाधिकारों की औपचारिक घोषणाएँ बीती शताब्दियों में ही की जाती रही हैं मगर संस्कृति का हिस्सा होने के नाते यह उतना ही पुराना है जितनी स्वयं मानव सभ्यता। इसके परम्परागत स्वरूप को हम इतिहास के किसी भी दौर में देख सकते हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव भारतीय परम्परा की धड़कनों में मौजूद रहा है। यहाँ स्वार्थ का कोलाहल नहीं परमार्थ की झंकारें सुनाई देती हैं जो मानवाधिकारों के प्रति सम्मान के प्रतीक हैं।

मध्यकाल में चरणदास ने लिखा है:-

“एक सुखी एक अति दुखी, एक भूप एक रंक।
एकन को विद्या बड़ी, एक पढ़े नहीं अंक॥
एकन को मेवा मिले, एक चबेना नहीं।
कारण कौन बताइए कर चरनन की छांह॥”

समाज का एक व्यक्ति अत्यधिक सुखी है, धनवान है, हाई डिग्री होल्डर है, मेवा ही खाता है- कुल मिलाकर राजा है। उसी समाज में दूसरा अत्यधिक दुःखी है, निर्धन है, निरक्षर है, सूखा चना तक जिसे नसीब नहीं- कुल मिलाकर रंक है, भिखमंगा है।

समाज में मौजूद असमानता की चेतना इन पंक्तियों में दिखती है और हरेक मानव को मानवोचित जीवन मिले इसकी प्रतिबद्धता भी स्पष्टतः झलकती है।

कलियुग वर्णन के अंतर्गत रामचरितमानव में मानवाधिकारों के हनन के प्रति गोस्वामीजी की छटपटाहट को देखा जा सकता है:-

“कलि बारहि-बार दुकाल परै
अन्न बिना सब लोक मरै।”

भुखमरी से मरते लोगों के प्रति मानवाधिकार की चेतना मध्यकाल में ऐसी है जैसे आज कालाहांडी, बोलांगगिर और कारोपुट के लिए हम अपेक्षा करते हैं और बफर स्टॉक में भरे अनाज आज भुखमरी की विडम्बना को और भी विडम्बनापूर्ण बना देते हैं।

रामराज्य का पैमाना गढ़ते हुए तुलसीदासजी मानवाधिकारविद् प्रतीत होते हैं जब वे दरिद्रता, दुःख, निरक्षरता और लक्षणहीनता से रहित समाज का स्वप्न देखते हैं:-



इस विशद वर्णन का आशय इतना ही है कि मानवाधिकार की चेतना परम्परागत रूप से मौजूद रही है।

मानवाधिकारों से सम्बद्ध औपचारिक (formal) वैश्विक प्रयासों पर अगर दृष्टिपात करें तो अनेक उल्लेखनीय बिन्दु हमें दिख जाते हैं:

- 1215 का ब्रिटेन का मैग्नाकार्टा
- 1687 का ब्रिटेन में बिल आफ राइट्स
- 1776 की अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा
- 1779 की फ्रांसीसी घोषणा आदि

इसी पृष्ठभूमि पर द्वितीय विश्ववियुद्ध लड़ा गया, आतंक छाया, मौतें हुई और अंततः 6th अगस्त और 9th अगस्त 1945 को परमाणु बम भी प्रयुक्त हुआ जो मानवाधिकार की दृष्टि से विश्व इतिहास का कृष्ण पक्ष है।

इसके बाद विश्व शांति एवं व्यवस्था की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ बना, जिसकी शाखा के रूप में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग का भी गठन 1945 में ही किया गया। 10th दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गई। 10th दिसम्बर को प्रतिवर्ष मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाने का भी निर्णय लिया गया ताकि मानवाधिकारों की रक्षा एवं अभिवृद्धि से संबंधित प्रयासों को व्यवस्थित रूप दिया जा सके। सार्वभौम घोषणापत्र में 30 अनुच्छेदों की बात की गई है जिसके प्रमुख बिन्दु अग्रवत हैं-

- स्वतंत्रता, समानता, धर्म, सम्पत्ति तथा निष्पक्ष और सार्वजनिक जीवन जीने का अधिकार
- विधि के समक्ष समता तथा निष्पक्ष और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार
- राष्ट्रीयता का अधिकार एवं राष्ट्र द्वारा अत्याचार करने पर शरण लेने का अधिकार
- शिक्षा का अधिकार
- आजीविका तथा अच्छे जीवन स्तर का अधिकार
- महिलाओं तथा बच्चों के लिए विशेष सामाजिक सुरक्षा का अधिकार आदि

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं संविधान की मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता भी उल्लेखनीय है। मानवाधिकार के आधुनिक अवधारणाओं एवं शब्दावली का गठन मूलतः पुनर्जागरण के पश्चात् पश्चिमी जगत में हुआ मगर साम्राज्यवादी शक्तियों के दोहरे मानदण्ड थे। मानवाधिकार के जिन मूल्यों की वकालत खुद पश्चिम कर रहा था, पश्चिमी उपनिवेशवाद उन्हीं मूल्यों के हनन की बुनियाद पर ही खड़ा था। इसलिए आजादी की लड़ाई इन्हीं मूल्यों के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई थी और अंततः विजय का परचम आजादी के रूप में इन मूल्यों के लिए ही लहराया।

तब यह स्वाभाविक ही था कि आजाद भारत के नवनिर्मित संविधान में मानवाधिकारों को तरजीह दी जाए। प्रत्येक नागरिक को मानवीय प्रतिष्ठा सुनिश्चित कराने की प्रतिबद्धता उद्देशिका (Preamble) में ही स्पष्ट झलकती है। मूलाधिकारों के रूप में भाग-3 (अनु. 12-35) व्यक्ति के पक्ष में और राज्य के विरुद्ध खड़ा है। मानवाधिकारों के संदर्भ में राज्य को रचनात्मक सक्रियता दिखाने का आह्वान भाग-4 (अनु. 36-51) में किया गया है। आज मानवाधिकार आयोग राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर कार्यरत है।

मानवाधिकार से सम्बद्ध विभिन्न बिन्दुओं के विश्लेषण के पश्चात् हमारे विचार का अगला मुद्दा आतंकवाद होना चाहिए।

वस्तुतः आतंकवाद व्यक्तियों के बीच की लड़ाई नहीं बल्कि सामाजिक समूहों और राजनीतिक शक्ति के बीच का संघर्ष है। आतंकवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसमें कोई समूह से अपनी मांग मनवाने के लिए हिंसा का सहारा लेता है।

आतंकवाद चोरी-डकैती जैसे अपराधों से भिन्न होता है क्योंकि चोरी-डकैती किसी व्यक्ति के यथार्थ को पूर्ति का साधन मात्र है वहीं आतंकवाद सामूहिक उद्देश्य से जुड़ा होता है, भले ही यह सामूहिक उद्देश्य या भावना अतार्किक ही क्यों न हो। डाकू अपने स्वार्थ के लिए किसी की भी जान ले सकता है मगर आतंकवादी सामूहिक उद्देश्य एवं विचारधारा के लिए अपनी जान दे भी सकता है।

राज्य के खिलाफ की जाने वाली माँग अगर राज्य से पृथक होने की हो तो यही आतंकवाद अलगाववाद कहलाता है।

आतंकवाद, विप्लव या विद्रोह से भी पृथक होता है। विद्रोह के लिए जनता के एक बड़े भाग का समर्थन अनिवार्य है मगर आतंकवाद के लिए यह जरूरी नहीं। इसी तरह विद्रोही उस राज्य का नागरिक होता है जिसके खिलाफ वह विद्रोह करता है मगर आतंकवादी के लिए यह अनिवार्य नहीं। अर्थात् आतंकवादी बाहरी भी हो सकता है।

आतंकवाद के लिए समाज में गरीबी, बेरोजगारी से भी अधिक जरूरी हिंसात्मक विचारात्मक आधार है। यह आधार कभी-कभी धर्म उपलब्ध कराता है तो कभी कोई विचारधारा। जैसे : नक्सलवाद वामपंथी हिंसात्मक विचारधारा पर आधारित आतंकवाद है।

इस तरह से आतंक के संबंध में कहा जा सकता है कि-

- यह राज्य या समाज के विरुद्ध होता है।
- इसका सामूहिक राजनीतिक उद्देश्य होता है।
- यह अवैध और गैर-कानूनी होता है।
- यह बुद्धिसंगत विचार को खत्म कर देता है।
- यह समाज में आतंक फैलाकर अपनी माँग मनवाना चाहता है।
- हिंसा से इसका गहरा रिश्ता है।
- हिंसा बिल्कुल मनमानी होती है क्योंकि पीड़ितों का चयन बेतरतीब और अन्धाधुन्ध होता है।
- इससे जनता के बीच बेचारगी एवं लाचारी का भाव पैदा होता है।

इस तरह से आतंकवाद अपने कुछ अतार्किक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए खून की नदियाँ बहाने में नहीं हिचकिचाता। मानव के मानवोचित जीवन की बात तो बहुत दूर हुई मानवीय जीवन के अस्तित्व का ही वह सम्मान नहीं करता। हो सकता है कि आतंकवादी की माँगें जायज हों मगर क्या उनका हिंसात्मक आतंकी तरीका कभी जायज ठहराया जा सकता है? बच्चे अपने मां-बाप खोकर यतीम हो जाते हैं। सुहागिनें अपना सुहाग खो देती हैं। माताएं अपने बच्चे खोकर सूनी गोद हो जाते हैं। वृद्ध अपने बुढ़ापे की लाठी खो देते हैं। क्या अपनी मांग मनवाने का यह अमानवीय तरीका मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं है? सूरज डूबते ही घर की किवाड़ों का बंद हो जाना क्या मानवोचित जीवन है? अमेरिकी चौधराहट की लाख आलोचनाएं की जाएं मगर 9/11 को जो चीख-पुकारें मचीं क्या वे जायज हैं? भारत में लोकतंत्र के मंदिर पर हमला हुआ क्या वह जायज था?

लगभग दो दशकों से धरती का स्वर्ग कश्मीर नरक बना हुआ है। लोग अपनी सम्पत्ति और आजीविका ही नहीं खो रहे बल्कि विस्थापन का दंश भी झेल रहे हैं। अपने परिवेश, अपनी संस्कृति, अपने पड़ोसी... सबसे दूर एक अलग-थलग जीवन जीने को बेबश, लाचार, मजबूर...

मगर पिछले वर्षों आतंकवाद के खिलाफ अमेरिका द्वारा मुहिम छेड़ी गई। स्पष्ट कह दिया गया कि जो राष्ट्र इस संघर्ष में हमारे साथ नहीं है, वे आतंकवाद के समर्थक माने जाएंगे। अमेरिका दृष्टि क्या राष्ट्रों की सम्प्रभुता का सम्मान करती है? शायद नहीं।

अमेरिका बम जब अफगानिस्तान और ईराक पर गिरे तो क्या 9/11 वाली चीखें ही नहीं सुनी गईं? अबूगरीब जेल की घटनाएँ क्या मानवाधिकारों के अनुकूल थीं?

आतंकवाद के खिलाफ किए जाने वाले हरेक जंग में सैन्य बलों द्वारा किए गए कृत्य भी मानवाधिकारों की दृष्टि से हमेशा प्रश्नवाचक चिन्ह रहे हैं। चाहे वह निर्दोषों की हत्या हो, अनावश्यक बल प्रयोग हो, महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार हो या फिर पुलिस कस्टडी में होने वाली मौतें हों।

अखबारों में अक्सर खबरें छपा करती हैं:-

“एक घना अंधेरा जेल है, जहाँ से रोशनी और हवा बिल्कुल लापता है। बीचों-बीच कुछ कैदी पड़े हुए हैं। ठण्ड में कंपकपाते... मगर उनके ओढ़ने के लिए कम्बल नहीं। वे बीमार हैं मगर उनके लिए दवा कहाँ? मच्छर उनकी खूब खबर लेते हैं मगर वहाँ मास्क्यूटो क्वॉइल (Mosquito Coil) कहाँ? आमोद-प्रमोद जीवन के अभिन्न अंग कहे जाते हैं मगर इण्टरनेटनेट के साधनों को वे तो भूल ही चुके हैं।”

ये कैदी जो जिंदगी जी रहे हैं वह मानवोचित नहीं मगर इन आतंकवादी कैदियों के मानवाधिकार का मुद्दा इतना सपाट भी नहीं। हमें इनके भोजन में कैलोरी की मात्रा कम होने का सवाल उठाने से पहले यह भी सोचना होगा कि कारावास में आने से पूर्व उसने कितने जघन्य अपराध किए? वह कैदी दूसरों के मानवाधिकारों का कितना सम्मान करता था? और दूसरों के मानवाधिकारों का सम्मान न करने वाले व्यक्ति को मानवाधिकारों का कौन-सा स्तर प्रदान किया जाए?

कहने का तात्पर्य है कि आतंकवादियों के मानवाधिकार का मुद्दा स्वयं बहुत उलझा हुआ है। आतंकवाद और मानवाधिकार के बिन्दु पर भी गंभीर सवालिया निशान है। एक ओर विधि का अनादर करने वाले एवं आमजन के बुद्धिसंगत विचारों को खत्म कर देने वाले (brain wash) आतंकवाद को खत्म करना भी जरूरी है वहीं दूसरी ओर-

- निवारक निरोध अधिनियम 1950
- आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) 1971
- रासुका : राष्ट्रीय सुरक्षा कानून
- टाडा
- पोटा

आदि के दुरुपयोग को भी हमें रोकना होगा ताकि अधिकाधिक लोगों के मानवाधिकारों को अधिकाधिक समुन्नत किया जा सके।

मानवाधिकारों के सम्मुख एक चुनौती है: आतंकवाद, क्योंकि आतंकवाद स्वयं तो मानवाधिकारों का हनन करती ही है साथ ही इसके खिलाफ लड़ा जाने वाला जंग भी मानवाधिकारों को क्षति पहुँचा रहा है। इसलिए आतंकवाद की समस्या का निदान एवं मानवाधिकारों का उन्नयन एक सम्मिलित रणनीति के हिस्से होने चाहिए।

आतंकवाद हिंसा की समस्या एवं प्रतिकूल सामाजार्थिक परिस्थितियों, दोनों का मिला- जुला रूप है। हिंसा की समस्या से निपटने के लिए:-

- राज्य को नहीं झुकना चाहिए। हरेक समस्या का समाधान संवाद के स्तर पर खोजा जाना चाहिए लेकिन आवश्यकतानुरूप हिंसा का दमन भी करना चाहिए।
- हिंसा का दमन करते हुए इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाए कि निर्दोष आम जनता के मानवाधिकारों का हनन न हों इसके लिए पुलिस, सैन्य व अर्द्ध सैन्य बलों को विशेष रूपेण संवेदनशीलता प्रशिक्षण (sensitivity training) दिया जाए।
- सैन्य बलों को चाहिए कि आम जनता के साथ मिलकर वे उनकी सुरक्षा की लड़ाई लड़ें। कश्मीर में आजकल ऐसे कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिसमें पुलिस और सेना के लोग जनसामान्य से विचार करते हैं, आतंकवादियों के वास्तविक उद्देश्य से उन्हें परिचित कराते हैं तथा मानवाधिकारों के न चाहते हुए होने वाले उल्लंघन के पीछे मजबूरियों को समझाते हैं।
- आतंकवाद का दमन आम आदमी की सहभागिता के साथ करना चाहिए। आत्मरक्षा संबंधी प्रशिक्षण दिये जाने चाहिए। ग्राम रक्षा समितियों का गठन होना चाहिए।

वहीं दूसरी ओर सामाजार्थिक प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने के लिए-

- सर्वप्रथम भुखमरी, गरीबी और बेरोजगारी का उन्मूलन करना होगा।
- मात्रात्मक शिक्षा के स्थान पर गुणात्मक शिक्षा का विकास करना होगा ताकि शिक्षा का स्वरूप तार्किक, वैज्ञानिक एवं धर्मनिरपेक्ष हो। साथ ही, मानवाधिकार जैसे गंभीर मुद्दों को प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा में भी पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए। ऐसे मुद्दे पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग होने चाहिए।
- समाज के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य संवाद को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हो सके तथा मानवाधिकार और आतंकवाद जैसे मुद्दों पर गतिशील रचनात्मक चेतना आए। इस हेतु ग्राम पर्यटन, सांस्कृतिक-पर्यटन आदि विकसित करने होंगे। साथ ही, विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में विभिन्न क्षेत्रों के लिए सीटों का आरक्षण होना

चाहिए। नौकरी, विवाह आदि में भी गतिशीलता अपेक्षित है।

- मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम - 1993 के प्रावधानों को अधिक सुदृढ़ता से लागू किया जाना चाहिए। सभी राज्यों में राज्य मानवाधिकारों आयोगों की स्थापना होनी चाहिए। साथ ही, मानवाधिकार साक्षरता (Human Rights Literacy) में वृद्धि हेतु मीडिया, समाजसेवी, संस्कृतिकर्मी सबको आगे लाना होगा।
- मानवाधिकारों के प्रति विस्तृत दृष्टि अपनाती होगी। रुढ़ियां जो लड़कियों की शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास को बाधित करती हैं, मानवाधिकारों के विरुद्ध हैं। शराबियों का शराब पीना सारे परिवार के सदस्यों के मानवाधिकारों का हनन है। कन्या भ्रूण हत्या मानवाधिकारों का उल्लंघन है। संतान द्वारा वृद्धों की परवरिश न करना भी मानवाधिकारों के विरोध में ही है। हमें इन तथ्यों को समझाना और स्वीकारना होगा।
- जेल सुधार के अंतर्गत जेलों में कैदियों की संख्या उपयुक्त स्तर में लानी होगी। स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार करना होगा। जजों की आवश्यकतानुसार सदर्थ नियुक्ति करके न्यायिक प्रणाली में तीव्रता लानी होगी। पुलिस एवं न्यायिक अधिकारियों को मानवाधिकार प्रशिक्षण देना होगा।

नदी कभी पूर्ण समतल में नहीं बह सकती। इसी तरह मानव सभ्यता का इतिहास भी पूर्णतः सपाट नहीं हो सकता। उच्चावच अर्थात् कभी ऊपर तो कभी कुछ नीचे ही जीवन ओर सभ्यता का यथार्थ है और इतिहास के प्रत्येक बिन्दु में मानवीय सार्थकता इसी बात से निर्धारित होती है कि सार्थक परिवर्तनकारी संघर्ष कितना किया गया। आतंकवाद और मानवाधिकार हनन जैसी अनेकों समस्याएं सभ्यता के इतिहास में कई बार आईं। मगर इन सबके बावजूद आज भी मानव जाति प्रगति के नित्य नए सोपानों को अनवरत तय करती जा रही है। मानवाधिकारों का सवाल इतने ज्वलंत तरीके से आज उठ रहा है तो यह एक समस्या के अस्तित्व के साथ-साथ उस समस्या के प्रति संवेदनशीलता का भी प्रमाण है। विल डूरन्ट का कथन है:

“व्यवस्था के साथ सभ्यता का आरंभ होता है, स्वाधीनता के साथ इसका विकास होता है और अव्यवस्था के साथ इसका (सभ्यता का) नाश हो जाता है।”

आशा ही नहीं बल्कि विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि मानव जाति को यह कथन स्मरण रहेगा। मानव जाति स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक प्रयासों द्वारा अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर ही गति करेगी तथा सभ्यता स्वयं के अस्तित्व को ही सुरक्षित नहीं करेगी बल्कि अनवर विकसित होती चलेगी एवं समस्त समस्याओं से मुक्त एक श्रेष्ठ विश्व व्यवस्था का निर्माण होगा।

(ओ.पी. चौधरी आई.ए.एस., छत्तीसगढ़)